

विकास के फंदे में खेती और किसान

-महेश त्यागी

बा गपत जिला उत्तर प्रदेश में गन्ना उत्पादन में पहले और गेहूँ उत्पादन में दूसरे स्थान पर है। लेकिन सिक्के का दूसरा पहलू यह है कि यहां हर तीसरा परिवार भूमिहीन है। राजस्व विभाग के अनुसार बागपत जिले में 44,061 परिवारों के पास खेती की जमीन नहीं है और 60 हजार किसानों के पास आधे एकड़ से भी कम जमीन है। इसी का नतीजा है कि इस क्षेत्र के 50 हजार से ज्यादा नौजवान रोजगार की तलाश में गांव छोड़ने को मजबूर हैं। इस कृषि प्रधान देश की हालत भी कमोबेश यही है।

‘विकास’ की दौड़ में शामिल हमारे देश के हुक्मरानों ने किसानों को हाशिये पर फेंक दिया है। किसानों से अनाज और चीनी खरीदने के बजाय सरकार इन्हें विदेशों से आयात करती है। किसान अपना माल बहुत कम कीमत पर बेचने को मजबूर है। रंगराजन समिति ने सरकार से चीनी मिलों को 988 करोड़ रुपये छूट देने की सिफारिश की है। 1944 चीनी मिलों पर किसानों के 4500 करोड़ बकाया रुपये हैं लेकिन इस समिति ने उनका बकाया दिलाने की कोई गंभीर कोशिश नहीं की। देश के कई हिस्सों में विशेष आर्थिक क्षेत्र (सेज) बनाने के लिये किसानों की जमीनें छिनी जा रही हैं। इस भूमि अधिग्रहण के खिलाफ नंदीग्राम, सिंगुर, दादरी, टप्पल और घोड़ी-बछेड़ा में किसानों ने जबरदस्त संघर्ष किया और कई इलाकों में यह आज भी जारी है, जहां सरकार आन्दोलनकारी किसानों का बर्बर दमन कर रही है। भूमि अधिग्रहण के कारण एक ओर किसान अपनी जगह-जमीन से उजड़ रहे हैं, तो दूसरी ओर खेती लायक भूमि पर उद्योग-धंधे लगाने और अमीरों के बस्तियों बसाने से खेती का रकबा घटता जा रहा है।

उत्तर प्रदेश देश का 13 वां ऐसा राज्य है जिसने ठेका खेती को मंजूरी दे दी। यह किसानों के खिलाफ देशी-विदेशी कंपनियों के पक्ष में उठाया गया कदम है। आन्ध्र प्रदेश ठेका खेती का कड़वा स्वाद चखने वाला पहला राज्य था, जहां किसानों ने विदेशी कंपनियों के साथ खीरा उगाने और



बेचने का करार किया था। किसानों ने इसके लिये प्रति एकड़ 30 से 40 हजार रुपये खर्च किये, जबकि फसल आने पर कंपनियों ने विश्व बाजार में खीरे के दाम गिरने का हवाला देकर उनसे फसल खरीदने से इनकार कर दिया। इन किसानों ने नकद फसल उगाने के लिये बैंकों और निजी साहूकारों से कर्ज लिया था। फसल का वाजिब दाम न मिलने के कारण हजारों किसान कर्ज के जाल में फंस गए। किसानों की बर्बादी का आलम यह है कि सरकारी नीतियों और पूंजीपतियों की लूट के चलते बर्बाद हुए किसानों में से 3.5 लाख किसान आत्महत्या कर चुके हैं।

कर्ज माफ़ी के नाम पर किसानों को मिलने वाली सरकारी सहायता भी भ्रष्टाचार की भेंट चढ़ जाती है। महंगी बिजली और पानी, मोंसेंटो और कारगिल जैसी विदेशी कम्पनी के एकाधिकार के चलते महंगे बीज और वायदा कारोबार के चलते फसल

का बाजिब दाम न मिल पाना, किसानों की बर्बादी का सबब बन चुके हैं। इतना ही क्या कम था कि बुंदेलखंड और महाराष्ट्र के इलाकों में सूखे ने किसानों को जमीन से ही उजाड़ना शुरू कर दिया है। दरअसल यह सूखा भी प्राकृतिक नहीं, बल्कि सरकार की नीतियों का ही परिणाम है।

अपनी सीमित जरूरतों और तत्कालिक स्वार्थों के अनुरूप तथा मुट्ठी भर धनी किसानों और फार्मरों को केन्द्र में रखते हुए खेती का पूंजीवादी विकास करने के लिये हमारे देश में हरित क्रान्ति की शुरुआत की गयी थी। इसमें उन्नत बीज, नयी तकनीक, रासायनिक खाद और कीटनाशक के इस्तेमाल पर जोर दिया गया। किसानों के हित में न्यूनतम समर्थन मूल्य, सरकारी खरीद, सहकारित को बढ़ावा, कृषि उत्पादों के आयात पर रोक और लागत पर सब्सीडी जैसी योजनाएं चलायी गयीं। सीमित क्षेत्रों और गिनी-चुनी

फसलों के लिये चलायी गयी हरित क्रान्ति की योजनाओं ने देश को तात्कालिक तौर पर खाद्यान्न उत्पादन में आत्म निर्भर बना दिया। इससे मालिक किसानों के जीवन में भी खुशहाली आयी। लेकिन कुछ सालों बाद हरित क्रान्ति की कमियां सामने आने लगी। इससे पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र और हरित क्रान्ति के दूसरे इलाकों में जल के अधिक दोहन के चलते भूजल स्तर नीचे चला गया और खेतबंजर होने लगे। रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के बेहिसाब इस्तेमाल से जल, जमीन और हवा में जहर घुल गया।

खेती बाजार के हवाले कर दी गयी। ग्रामीण क्षेत्रों में औद्योगिक माल का एक बाजार निर्मित हुआ। पूंजीपति किसानों का जमकर शोषण करने लगे। लेकिन इसका आधार बहुत सीमित रहा। मुट्ठीभर पूंजीपतियों और कुछ धनी किसानों की सम्पन्नता के अलावा हरित क्रान्ति पूरे देश के समग्र विकास की प्रेरक नहीं बन सकी।

1980 तक आते-आते देश की अर्थव्यवस्था ठहराव की शिकार हो गयी। लेकिन सरकार ने इस ठहराव को तोड़ने के नाम पर और भी खतरनाक रास्ता अपनाया। 1991 में नयी आर्थिक नीति लागू की गयी। आगे चलकर 1995 में विश्व व्यापार संगठन की स्थापना और देश के हुक्मरानों द्वारा डंकल प्रस्ताव की मंजूरी ने खेती, खेतिहर आबादी को नयी गुलामी की ओर धकेल दिया। विश्व बैंक और अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के दबाव में खेती पर मिलने वाली सब्सिडी को धीरे-धीरे करके खत्म कर दिया गया। कारगिल और मोंसेंटो जैसी बीज कम्पनियों को देश के अन्दर लूट की खुली छूट दे दी गयी। कृषि अनुसंधान केन्द्र, उर्वरक और कीटनाशक दवाओं के कारखानों तथा बिजली, पानी की आपूर्ति को देशी-विदेशी पूंजीपतियों के हवाले कर दिया गया। देश के कृषि वैज्ञानिक अपने देश की जरूरतों के लिये नहीं, बल्कि विदेशी कम्पनियों के मुनाफे के लिये शोध करने लगे। सरकारें किसान विरोधी हो गयीं। अमीरों को मिलने वाली सब्सिडी की रकम बढ़ा दी गयी, जबकि किसानों को दी जाने वाली सब्सिडी और

कर्ज की ब्याज दर में छूट घटा दी गयी। किसान अपनी जरूरतों के अनुरूप अनाज की खेती करने के बजाय विदेशी निर्यात के लिये पिपरमेन्ट, सफेद मूसली, जैट्रो जैट्रोफा और फूलों की खेती करने लगे। ऐसी फसलों के बर्बाद हो जाने या विश्व बाजार में न बिक पाने की स्थिति में भूखों मरने की नौबत आ गयी, क्योंकि सफेद मूसली, जैट्रोफा और फूल खाकर किसान जिन्दा नहीं रह सकते।

अर्थव्यवस्था का आधार मानी जाने वाली खेती, निजीकरण-उदारीकरण और वैश्वीकरण के प्रभाव में आज बुरी तरह उपेक्षित है। यही कारण है कि देश के सकल घरेलू उत्पाद में खेती का योगदान लगातार गिरता जा रहा है। आज हरित क्रान्ति का सिरमौर, पंजाब सहित देश के कई हिस्सों के गांव बर्बादी के कगार पर हैं। पंजाब के कई किसान अपनी ही बिक चुकी जमीन पर मजदूरी करके जीविका चला रहे हैं। पीढ़ी-दर-पीढ़ी जमीन बंटते जाने से नयी पीढ़ी के परिवारों के पास जमीन का बहुत छोटा रकबा बच गया है। छोटी जोत पर अधिक लागत और कम मुनाफे वाली खेती के कारण अधिकांश किसानों के लिये खेती घाटे का सौदा है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में भी जल स्तर तेजी से गिरने लगा है, जिसकी वजह से जल संकट की स्थिति पैदा हो रही है। पहले जहां 20 फीट पर ट्यूबवेल चलता था, वहां 200 फीट तक सबमरसिबल डालना पड़ रहा है।

आजादी के बाद से ही उद्योगपतियों और कुछ बड़े भूस्वामी फार्मरों के हित में विकास के जिस विकृत मार्ग को अपनाया गया उसके कारण खेती का चहुंमुखी और चिरस्थायी विकास सम्भव नहीं था संकट को हल करने के नाम पर 1991 में अपनायी गयी नयी आर्थिक नीति ने रही सही कसर भी पूरी कर दी। किसानों की खुशहाली को तिलांजली देते हुए खेती को देशी-विदेश पूंजी के निर्मम लूट-खसोट का साधन बना दिया गया। आखिर कब तक किसान अपनी बर्बादी का नजारा देखते रहेंगे। इन हालात का अन्धा तमाशबीन बनने के बाजाय उसे बदलने के लिये आगे आना होगा।

तुर्की-ब-तुर्की



“में नरेन्द्र मोदी को प्रधानमंत्री बनाये जाने के खिलाफ हूँ क्योंकि वे अल्पसंख्यकों में असुरक्षा की भावना पैदा करते हैं।”

- अमर्त्य सेन

नहीं निभाई थी? आप उस समय भी एक प्रख्यात समाज-वैज्ञानिक थे। क्या आप बताना चाहेंगे कि आपने राजीव गांधी को प्रधानमंत्री पद के लिये अयोग्य क्यों नहीं घोषित किया? उस समय भी यह आधार बनता था कि एक अल्प संख्यक समुदाय (सिख) के भीतर राज्य की भूमिका को लेकर व्यापक असुरक्षा भरी हुई थी।

□ अमर्त्यसेन जी आप एक जाने-माने अर्थशास्त्री हैं। आपके जैसा ही एक अन्य अर्थशास्त्री भारत का प्रधानमंत्री बना हुआ है, जिनका नाम मनमोहन सिंह है। मोनटेक सिंह अहलूवालिया नामक एक अन्य अर्थशास्त्री भारतीय योजना आयोग का उपाध्यक्ष है। ये दोनों अर्थशास्त्री मिल कर करोड़ों भारतीयों के मन में

आर्थिक असुरक्षा स्याई रूप से भर चुके हैं दिन-ब-दिन बढ़ती महंगाई, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार और स्वास्थ्य, शिक्षा, आवास, पेयजल, खाद्यान्न से वंचना ने अधिकांश भारतीयों के जीवन को जानवरों जैसा बना रखा है। न उनका कोई वर्तमान है और न कोई भविष्य। महोदय अर्थशास्त्र का ज्ञाता होने के नाते आपसे ज्यादा अच्छी तरह कौन जानता होगा कि मनमोहन सिंह और मोनटेक सिंह की नीतियां भी देशवासियों की बद्दहाली के लिये जिम्मेदार हैं। वे बेहद बेशर्मी से सरमायेदारों के हक में अर्थिक लूट को संचालित कर रहे हैं। इससे भारत का आम नागरिक अपने आप को आर्थिक असुरक्षा के अंधेरे में घिरा पाता है। क्या यह भी उतना ही खतरनाक नहीं है जितना कि भौतिक असुरक्षा का अंधेरा।

ऐसे में क्या आपको मनमोहन व मोनटेक को उनके पदों के अयोग्य नहीं ठहराना चाहिये?

□ न्यायिक असुरक्षा के बारे में भी क्या आपने कभी सोचा है महोदय? आज की न्याय व्यवस्था पूरी तरह पैसे और प्रभाव वालों की व्यवस्था है। बाकियों के लिये एक ऐसा सवेदनहीन तंत्र है जो उन्हें हालात के रहमो-काम पर रखता है। इसी तरह का हाल देश की राजनैतिक व्यवस्था का है जो गुंडों और मुनाफारसोवोर निवेशकों के हथके चढ़ चुकी है। नतीजे के तौर पर राज्य-संचालित राजनैतिक असुरक्षा आम देशवासी पर हावी रहती है। क्या, आप महोदय, सर्वोच्च न्यायालय और चुनाव आयोग राजनैतिक दलों को उनकी वांछित भूमिका के अयोग्य घोषित करना चाहेंगे?

हमारा कहना है-

□ सन् 2002 के गुजरात नरसंहार में बतौर मुख्यमंत्री मोदी ने जो भूमिका निभाई उससे स्वाभाविक था कि मुसलमानों के अन्दर राज्य की भूमिका को लेकर असुरक्षा की भावना घर कर जाये। तब से आज तक मोदी ने न तो अपनी कारगुजारियों के लिये खेद

प्रगट किया है और न ही उस दौर में सीधे तौर पर हत्या एवं लूट-पाट में लिप्त अपराधियों को कानून के प्रति उत्तरदायी बनाने के लिये कोई सक्रियता ही निभाई है। इस संदर्भ में आपका कथन एकदम सटीक है श्रीमान अमर्त्य सेन महोदय! पर क्या मोदी जैसी ही भूमिका 1984 के सिख-नरसंहार के दौरान राजीव गांधी के प्रोत्साहन से कांग्रेसी गुंडों ने भी